

श्री साईसच्चरित

॥ अथ श्रीसाईसच्चरित ॥ अध्याय १४ वा ॥



॥ श्रीगणेशाय नमः॥ श्रीसरस्वत्यै नमः॥ श्रीगुरुभ्यो नमः॥ श्रीकुलदेवतायै नमः॥ श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः॥ श्रीसद्गुरुसाईनाथाय नमः॥ जय साईनाथा संतवरा। जय जय दयाळा गुणगंभीरा। जय निर्विकारा परात्परा। जय जय अपारा निरवद्या॥१॥ ठेवूनि अलक्ष्यीं दृष्टी। निजभक्तार्थ दया पोटीं। नानामिषे भक्तांसी भेटी। देऊनि संकटीं तारिसी॥२॥ करावया दीनोद्धार। हाही एक लीलावतार। भक्तदुर्वासना दुर्धर। दुष्ट निशाचर वधावया॥३॥ सद्भावे दर्शना जे जे आले। ते ते स्वानंदरस प्याले। अंतरीं आनंदनिर्भर धाले। डोलूं लागले प्रेमसुखें॥४॥ एवंगुण साईसमर्थ। हीन दीन मी अतिविनीत। तयांचिया चरणाप्रत। साष्टांग प्रणिपात दीनाचा॥५॥ आतां पूर्वकथानुसंधान। कृष्ण श्वान भक्षितां दध्योदन। जाहलें हिमज्वराचें निरसन। कथा निवेदन जाहली॥६॥ दुर्धर वाखा आणि मोडसी। अंगुलीतर्जनतरणमात्रेंसीं। भर्जित भुईमूग सेवावयासी। देऊनि नाहीशीं जाहलीं॥७॥ तैसाच एकाचा पोटशूळ। एकाचा कर्णरोग समूळ। एका क्षयरोग महाप्रबळ। कैसा निर्दळला दर्शनें॥८॥ कैसे श्रीसाईकृपेंकरुन। भीमाजी जाहले सुखसंपन्न। साईलागीं कृतज्ञता पूर्ण। चरणीं शरण अखंड॥९॥ तैसाचि अभिनव हाही प्रकार। हाही अपूर्व चमत्कार। श्रोतियां श्रवणार्थी बहु आदर। जाणोनि सादर करीतसें॥१०॥ श्रोतीं नसतां सावधान। कैसें येईल वक्त्यासी स्फुरण। कैसें गुणा चढेल कथन। कैसें तें रसपूर्ण होईल॥११॥ वक्ता काय करील कथन। सर्वथैव तो श्रोतयां आधीन। श्रोतेच तयाचे अवलंबन। रसवर्धन तेणेनी॥१२॥ आधींचि हें संतचरित्र। स्वभावेचि गोड बाह्याभ्यंतर। गोड संतांचे आहार विहार। सहजोद्गारही गोड॥१३॥ चरित्र नव्हे हें स्वानंदजीवन। साईमहाराज दयाघन। प्रेमं भक्तांलागून। वर्षले साधन निजस्मरणा॥१४॥ गोष्टी सांगत प्रवृत्तीच्या। मार्गास लावीत निवृत्तीच्या। ऐशा प्रपंचपरमार्थाच्या। सत्पुरुषांच्या या कथा॥१५॥ हेतु तरी हेच असावे। कीं संसारीं सुखें वर्तावें। परि नित्य सावध राहावें। सार्थक करावें देहाचें॥१६॥ अनंत पुण्याईच्या बळें। अवचटें जीवा नरदेह मिळे। त्यांतही परमार्थ जयां आकळे। भाग्यें आगळे ते एक॥१७॥ तेथेही जो करीना सार्थक। जन्मला भूभार तो निरर्थक। पशूहूनि काय अधिक। जगण्याचें सुख तयाला॥१८॥ आहार निद्रा भय मैथुन। यांहूनि कांहीं न जाणे जो आन। तो नर केवळ पशूसमान। पुच्छ-विषाणविरहित॥१९॥ काय या नरजन्माची महती। एणेचि साधेल भगवद्भक्ती। पार्यीं लागतील चारी मुक्ति। निजात्मप्राप्ति एणेचि॥२०॥ मेघमंडळीं विद्युल्लेखा। संसार हा चंचल तिजसारिखा। एथें कालाहिग्रस्त लोकां। सुखाची घटिका दुर्मिळ॥२१॥ माता पिता भगिनी भ्राता। दारा पुत्र सुता चुलता। नदीप्रवाहीं काष्ठें वाहतां। एकत्र मिळतात तैसे हे॥२२॥ दिसलीं क्षण एक एकवट। लाटेसरसी फाटाफूट। होऊनि पडे जें ताटातूट। जुळेना तो घाट पुनश्च॥२३॥ साधिलें न आत्महित जनीं। व्यर्थ शिणविली तयानें जननी। लागल्यावीण संतांचे चरणीं। होईल हानी जन्माची॥२४॥ प्राणी जेव्हां जन्मास आला। तेव्हांचि मृत्युपंथा लागला। मग आज उद्यां कीं परवांला। विश्वासला नर फसला तो॥२५॥ ठेवावें या मरणाचें स्मरण। देह केवळ काळाचें वैरण। ऐसें या प्रपंचाचें लक्षण। सावधान असावें॥२६॥ व्यवहारीं पाऊल ठेवितां चौकस। परमार्थ पावेल अप्रयास। म्हणूनि प्रपंचीं नसावा आळस। पुरुषार्थी उदास असूं नये॥२७॥ प्रेमं साईकथा परिसती। तयांसी होईल निःश्रेयसप्राप्ती। साईचरणीं वाढेल भक्ति। सुखसंवित्ति लाधेल॥२८॥ जयांसी साईचें प्रेम पूर्ण। तयांसी हें कथांचें सांठवण। देईल पदोपदीं आठवण। साईचरणपंकजांची॥२९॥ निःशब्दाचें शब्दें कथन। अतींद्रियाचें इंद्रियें सेवन। कितीही करा हें कथामृतपान। पूर्ण समाधान दुर्लभ॥३०॥ अतर्क्य संतांचें विंदान। अनिर्वचनीय तन्महिमान। तयाचें वाचे पूर्ण कथन। कराया कोण समर्थ॥३१॥ नित्य पडतां या कथा श्रवणीं। साई दिसेल नित्य नयनीं। मनीं ध्यानीं दिवारजनीं। स्मरणीं चिंतनीं राहिल॥३२॥ दिसूं लागेल जागृतिस्वप्नीं। आसनीं शयनीं आणि भोजनीं। सवेंही येईल गमनागमनीं। जनीं वनीं निरंतर॥३३॥ ऐसा येतां निदिध्यासनीं। मन पावेल स्थिती उन्मनी। ऐसें होऊं लागतां अनुदिनीं। चित्त चैतन्यीं समरसेल॥३४॥ आतां पुढील कथेची संगती। असे जी कथिली पूर्वाध्यायांतीं। करूं तिचा उपक्रम संप्रती। सादर श्रोतीं होईजे॥३५॥ भावभक्तीची शिरापुरी। कितीही खा सदा अपुरी। जरी आकंड सेविली तरी। तृप्ति न परिपूर्ण कधींही॥३६॥ असो आतां ही दुसरी कथा। श्रोतां आपण सादर परिसतां। संतदर्शन सार्थकता। होईल दृढता मनाची॥३७॥ बाबा न बाह्यतः कांहींच करीत। स्थान सोडूनि कोठें न जात। परि बैसल्या स्थळीं सर्व जाणत। अनुभव देत सकळां जनां॥३८॥ जें सत्तत्त्वही निजपिंडीं। तेंचि कीं अखिल ब्रह्मांडीं। कायेची करोनि कुरवंडी। अखंडित अवलोका॥३९॥ त्या सत्तत्त्वासी जो शरण। सर्वांसाठीं तया एकत्व जाण। नानात्वाचें केलिया धारण। जन्म-मरणपरंपरा॥४०॥ नानात्व स्थापणारी बुद्धि। अविद्याच जाणावी त्रिशुद्धी। गुर्वागमं चित्तशुद्धि। स्वरूपस्थिति तेणेनी॥४१॥ अविद्येपासाव निवृत्ति। तीच एकत्वाची प्राप्ति। अणुमात्र असतां भेद चित्तीं। अनन्य स्थिति ती केंची॥४२॥ ब्रह्मादि-स्थावरान्त। जें जें उपाधिसमन्वित। अविवेकियां अब्रह्मवत्। ओतप्रोत ब्रह्म तें॥४३॥ तें सकल

विज्ञानघनस्वभाव। संसारधर्मा जेथ अभाव। नामरूपांचा पुसिला ठाव। निरवयव ब्रह्म तें॥४४॥ उपाधिस्वभावभेदें। अविद्यामोहादि प्रमादें। नानात्वीं हें चित्त लोघे। एकत्वबोधें स्वस्थ हो॥४५॥ मी वेगळा जन वेगळे। ऐसें न जया कांहीं निराळें। अखंडैकरसपूर्ण जें भरलें। दुजें न उरलें तयातें॥४६॥ नामरूप कार्य करणें। या सर्व उपाधि समजणें। नानात्व सर्वथैव त्यजणें। ब्रह्म होणें तें हेंच॥४७॥ मीच एक अवघा पाहीं। मजवीण रिता ठाव नाही। व्यापूनि अशेष दिशा दाही। नाहीच कांहीं मदन्य॥४८॥ हेचि भावना दृढ धरावी। माया भूल दूरी सारावी। मजवीण नाही वस्तु परावी। आवरावी निजदृष्टि॥४९॥ श्रोतयां सहज येई संशय। तरी हा भेद कैसा होय। जीव ज्ञाता, ब्रह्म ज्ञेय। कोण उपाय हा जाया॥५०॥ भेदबुद्धि रतिप्रमाण। अनन्यत्वा पाडी खाण। तात्काळ उत्पादी नानापण। जन्म-मरणकारणा॥५१॥ अविद्यातिमिरदृष्टि। लोपतां लोपे सकळ सृष्टि। सस्वरूपैक भरेल दिठी। नानात्व उठाउठी पळेल॥५२॥ शुद्धोदकीं शुद्धोदक। घालितां होतें निखिळ एक। पूर्वापर समरसे देख। ओळख नुरे भेदाची॥५३॥ काष्ठाकार भिन्न भिन्न। परि तीं अग्निस्वरूपें अभिन्न। तो तो अविच्छिन्न आकारहीन। स्वयें विलीन निजरूपीं॥५४॥ ऐसेंच आत्मैक्य-विज्ञान। नलगे अन्य प्रतिपादन। आत्मा सर्वाभूतीं परिपूर्ण। रूपविहीन सर्वथा॥५५॥ विपरीत अध्यारोप निमित्त। तेणें भ्रमित सर्वदा चित्त। जन्ममरणादि दुःखें अनुभवित। प्राणी दुःश्चित्त सर्वदा॥५६॥ त्यागूनि नामरूपादि उपाधी। विशुद्ध विज्ञानरूप साधी। ऐशिया सिद्धासी माया न बाधी। निजानंदीं रत सदा॥५७॥ ऐशिया स्थितीचें उदाहरण। मूर्तिमंत श्रीसाईचे चरण। भाग्यें लाभलें जयां दर्शन। धन्य धन्य जन ऐसे॥५८॥ चंद्र उदकीं दिसे स्थित। परि तो जैसा उदकातीत। संत तैसेचि भक्तपरिवेष्टित। वस्तुतः अलिप्त तयांसी॥५९॥ दिसे जरी परिवारिला भक्तीं। परि न कोठेंही आसक्ती। स्वस्वरूपीं चित्तवृत्ति। दृश्यनिवृत्ति सर्वदा॥६०॥ ऐसे हे महा साधुसंत। जयांच्या बोलांत वर्ते भगवंत। कांहीं न अप्राप्य तयां विश्वांत। कांहीं न अज्ञात तयांतें॥६१॥ उपदेश देती आणि घेती। ऐसे गुरु-शिष्य असंख्य जगतीं। परि उपदेशासवें अनुभूति। देती हातीं ते विरळा॥६२॥ पुरें आतां हें पूर्ववर्णन। करूं मुख्य कथावतरण। तदर्थीं श्रोते सोत्कंठ पूर्ण। श्रवणसंपन्न होवोत॥६३॥ मोंगलाई नांदेड शहरीं। पारशी एक प्रख्यात व्यापारी। धार्मिक लोकप्रिय भारी। नाम निर्धारिं रतनजी॥६४॥ धनसंपदेचे पसारें। गाड्या घोडे शेतें शिवारें। वाडियांचीं मुक्तद्वारें। विन्मुख माघारें नच कोणी॥६५॥ ऐसे बाह्यतः आनंदसागरीं। दुंबत असतां अहोरात्रीं। अंतरीं दुर्धर चिंतामगरी। सदैव घेरी शेटीतें॥६६॥ हें तों ईश्वरी सूत्रचि पाहीं। निर्भेळ सौख्य नाही कुणाही। कोणास कांहीं कोणास कांहीं। हुरहुर राही पाठीसी॥६७॥ कोणी म्हणेल मीच मोठा। सर्वैश्वर्य मीच लाठा। चालूं लागेल उफराटा। नसता ताठा भरेल॥६८॥ निर्व्यंगत्वा लागेल दृष्ट। लव-व्यंगत्वाचें गालबोट। परमेष्ठी स्वकरेंच फांसी यथेष्ट। ऐसें हे स्पष्ट वाटतें॥६९॥ रतनजी धनकनकसंपन्न। आलिया गेलिया घाली अन्न। दीनांचें विच्छिन्न करी दैन्य। सुप्रसन्न सर्वदा॥७०॥ एवं शेटजी सुखांत होते। घेतलें जरी हें जगाचिया चित्तें। परि वित्ताचें सौख्य विफल तें। पुत्रहीनातें सर्वथा॥७१॥ कन्या-संपत्तीचा पसारा। एकामागूनि एक बारा। कोठूनि लाभेल सुखाचा वारा। मनासी थारा केंचा त्या॥७२॥ प्रेमावीण हरिकीर्तन। तालस्वरावीण गायन। यज्ञोपवीतावीण ब्राह्मण। शोभा कवण तयाची॥७३॥ आहे सकलकलाप्रवीण। नाही सारासार ज्ञान। भूतदयाहीन आचारसंपन्न। शोभा कवण तयाची॥७४॥ भाळीं टिळे गोपीचंदन। गळां तुळशीमाळा भूषण। जिढा करी संतविडंबन। शोभा कवण तयाची॥७५॥ अनुतापावीण तीर्थाटन। गळसरीवीण अलंकरण। पुत्रावीण गृहस्थसदन। शोभा कवण तयाची॥७६॥ एक तरी सुपुत्र-संतान। देईल काय नारायण। हेंच तया अनुदिन चिंतन। निश्चित मन होईना॥७७॥ तेणें शेटजी सदा खिन्न। गोड न लागे अन्नपान। मनीं रात्रंदिन उद्विग्न। चिंतामग्न सर्वदा॥७८॥ देवा माझा एवढा कलंक। धुऊनि कीजे मज निष्कलंक। देई वंशा आधार एक। लज्जा राख प्रभुराया॥७९॥ दासगणूंवर मोठी भक्ति। जीवींचें हार्द तयां निवेदिती। ते म्हणती जा शिरडीप्रती। मनेप्सित पावसी॥८०॥ घेई बाबांचें दर्शन। चरण तयांचे वंदून। करीं साद्यंत गुह्य निवेदन। आशीर्वचन देतील॥८१॥ जा होईल तुजें कल्याण। अतर्क्य बाबांचें विंदान। जाई तयांसी अनन्य शरण। कृतकल्याण होशील॥८२॥ मनास मानवला विचार। रतनजींचा झाला निर्धार। कांहीं दिन लोटलियावर। पातले शिरडीवर रतनजी॥८३॥ गेले दर्शना मशिदीसी। घातलें लोटांगण साईपदासी। पाहोनि महाराज पुण्यराशी। प्रेम तयांसी लोटलें॥८४॥ करंड फुलांचा सोडिला। सुमन हार काढूनि घेतला। प्रेमें बाबांच्या गळां घातला। फलभार समर्पिला चरणांतें॥८५॥ होऊनियां अति विनीत। रतनजी अत्यादरयुक्त। बाबांपाशीं जाऊनि बैसत। प्रार्थना करीत ती परिसा॥८६॥ जन पडतां महत्संकटीं। येती आपुल्या पायांनिकटी। बाबा रक्षिती उठाउठी। म्यां हे गोष्टी ऐकिली॥८७॥ म्हणोनि इथवर आलों भेटी। धरोनि मोठी उत्कंठा पोटीं। सादर करितों चरणसंपुटीं। परता न लोटीं महाराजा॥८८॥ मग म्हणती बाबा तयांसी। येतां येतां आज येसी। दे काय मज दक्षिणा देसी। मग तूं होसी कृतार्थ॥८९॥ येतां कोणीही दर्शनासी। लागतां चरण वंदावयासी। असो हिंदु यवन वा पारसी। दक्षिणा त्यापासीं मागत॥९०॥ ती तरी काय थोडी थोडकी। रुपये एक दोन वा पंचकडी। मागत शत सहस्र लक्ष कोडी। स्वेच्छा परवडी दक्षिणा॥९१॥ दिधली तरी आणिक आणा। संपली म्हणतां उसनी घ्याना। जेव्हां कोठें उसनीही मिळेना। तेव्हां मग याचना थांबवीत॥९२॥ आणिक तयां भक्तां म्हणत। “फिकीर न करीं जा यत्किंचित। देईन तुजला रुपये मी मस्त। बैसें तूं निश्चित मजपाशीं॥९३॥ दुनिया में किसी का कोई है। और किसी का कोई है। अपना तो यहां कोई नहीं है। अपना अल्ला ही अल्ला है॥९४॥ करी जो मज जीव प्राण। ऐशियाचीच मज वाण। तो देतां मज एक गुण। देतां मी शतगुण तयासी”॥९५॥ असेना मोठा लक्षाधीश। तयासही दक्षिणा मागावयास। निर्धना घरीं जावयास। करीत आज्ञेस महाराज॥९६॥ मोठा धनाढ्य अथवा रंक। गरीब दुर्बळ अथवा खंक। एक उणा वा एक अधिक। नाही ठारुक साईस॥९७॥ वंदूनियां आज्ञा शिरीं। निरभिमान होऊनि अंतरीं। बाबांलागीं याचना करी। जाऊनि घरीं गरीबांच्या॥९८॥ तरी या पोटीं हाच सारांश। दक्षिणेचें करुनि मिष। बाबा शिकवीत

निजभक्तांस। वरावयास सलीनता।।१९।। उपजेल कोणासही ऐशी शंका। साधूस तों पाहिजे धन कां। यदर्थी विचार करितां निका। फिटेल आशंका मनाची।।१००।। साई जरी पूर्णकाम। दक्षिणेचें काय काम। कैसा असेल तो निष्काम। भक्तांसीं दाम मागे जो।।१०१।। जयासी गारा आणि हिरा। ताम्र-नाणें वा स्वर्णमोहरा। एकाचि परिमाणाचा विकरा। तो कां निजकरा पसरितो।।१०२।। उदरपूर्त्यर्थ मागती भिक्षा। वैराग्याची वरिली दीक्षा। तया विरक्ता निरपेक्षा। काय अपेक्षा दक्षिणेची।।१०३।। अष्टसिद्धि जोडिल्या करीं। जयाचे सदा तिष्ठती द्वारीं। नवनिधि जयाचे आज्ञाधारी। तया कां लाचारी द्रव्यार्थ।।१०४।। ऐहिकावरी मारुनि लाथ। आमुष्मिका न दुंकून पहात। ऐसे जे सम्यग्दर्शी विरक्त। धन किमर्थ तयांना।।१०५।। जे संत साधु सज्जन। जे उत्तमश्लोकपरायण। भक्तकल्याणार्थ जयांचें जीवन। तयांसी धन कां व्हावें।।१०६।। साधूसी किमर्थ व्हावी दक्षिणा। तयांनीं असावें निरिच्छ मना। फकीर होऊनि लोभ सुटेना। नित्य आराधना पैशाची।।१०७।। प्रथमदर्शना घेती दक्षिणा। पुनर्दर्शना मागती दक्षिणा। निरोप घेतां आणा दक्षिणा। क्षणोक्षणीं हें काय।।१०८।। आधीं पानीय उत्तरापोशन। पुढें हस्तमुख-प्रक्षालन। करोद्वर्तन तांबूलदान। तयामागून दक्षिणा।।१०९।। परि बाबांचा क्रम विलक्षण। करूं जातांचि चंदनविलेपन। किंवा अक्षताद्यलंकरण। दक्षिणाप्रदान कांक्षिती।।११०।। आरंभितांच पूर्वाराधना। बाबा आधींच मागती दक्षिणा। ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणा। तत्क्षणाच करणें ये।।१११।। तरी या शंकेचें निरसन। कराया नलगे महाप्रयत्न। होतां क्षणैक दत्तावधान। समाधान लाधाल।।११२।। धनाचा जो करणें संचयन। धर्म घडावा हाचि आशय। परी क्षुल्लक काम आणि विषय। यांतचि अतिशय वेंचे तें।।११३।। धनापासाव धर्म घडे। धर्मापासाव ज्ञान जोडे। स्वार्थ तरी तो परमार्थी चढे। मना आतुडे समाधान।।११४।। आरंभीं बहुतकालपर्यंत। बाबा कांहींही नव्हते घेत। जळक्या काड्यांचा संग्रह करीत। तोच कीं भरीत खिशांत।।११५।। असो भक्त वा अभक्त। कोणाहीपार्शीं कांहीं न मागत। दिडकी दुगाणी ठेविल्या तेथ। तमाखू आणीत वा तेल।।११६।। तमाखूचें फार प्रेम। ओढीत विडी अथवा चिलीम। त्या चिलीमीची सेवाही निस्सीम। बहुधा निर्धूम्र नसे ती।।११७।। पुढें आलें कोणाचे मना। रिक्तहस्तें दक्षिणेविना। जावें कैसें संतदर्शना। तदर्थ दक्षिणा ते घेत।।११८।। दिडकी दिधल्या घालीत खिशां। ठेवितां कोणी ढबू पैसा। परत करीत जैशाचा तैसा। क्रम हा ऐसा बहुकाळ।।११९।। परि पुढें कांहीं कालें। साईबाबांचें माहात्म्य वाढलें। भक्तांचे थवे येऊं लागले। पूजन चाललें विधिपूर्वक।।१२०।। नाहीं पूजेची साङ्गता जाण। सुवर्ण-पुष्प-दक्षिणेवीण। हें तों नित्यपूजेचें विधान। पूजकां प्रमाण ठाउकें।।१२१।। राज्याभिषेकसिंचना। अथवा संपादितां पदपूजना। पूजक आणिती उपायना। तैसीच दक्षिणा गुरुपूजे।।१२२।। “उच्चादिवि दक्षिणावंत। हिरण्यदा अमृतवंत। हेमदाता शुद्धिमंत”। मंत्रवर्णांत हें वचन।।१२३।। सौमंगल्य गंधदानें। आयुष्यवर्धन अक्षतेनें। श्री ऐश्वर्य पुष्पतांबूलार्पणें। दक्षिणेनें बहुधनता।।१२४।। गंधाक्षत-पुष्प तांबूल। पूजाद्रव्यांत जैसें मूल। तैसीच दक्षिणा सुवर्णफूल। बहुधन फल वितरिते।।१२५।। दक्षिणा लागे देवतापूजनीं। तैसीच तत्सांगतासिद्ध्यर्थ जनीं। व्रतोद्यापन वायनदानीं। हिरण्य लागे अर्पाया।।१२६।। जगाची ही घडामोड। पैशावरीच सारी मोड। अब्रनुकसानीचीही फेड। फेडितात ही पैशानें।।१२७।। “हिरण्यगर्भ-गर्भस्थ”। इत्यादि मंत्र उच्चारित। देवपूजेसही दक्षिणा संमत। संतपूजनींच कां नको।।१२८।। संतदर्शना जातां। आपापुल्या ज्ञानानुसारता। येतें कोणाच्या काय चित्ता। एकवाक्यता दुर्मिळ।।१२९।। भजनभावार्थ कोणा मनीं। कोणी संतपरीक्षेलागुनि। कोणी म्हणे मनींचें सांगुनि। देईल जनीं तो संत।।१३०।। कोणी प्रार्थिती दीर्घायुता। हस्ति-हिरण्य-संपत्ति-मत्ता। कोणी पुत्रपौत्रवत्ता। अखंडित सत्ता मागती।।१३१।। नवल बाबांची अगाध शैली। जावोत कोणी कराया कुटाळी। दुर्बुद्धीची होऊनि होळी। चरणकमळीं विनटत।।१३२।। हेंही भाग्य नसलिया संचितीं। अनुताप तरी पावत चितीं। होऊनि निरभिमान निश्चिती। दृढ प्रचीती पावत।।१३३।। हे तों सर्व प्राकृत भक्त। सर्वथैव प्रपंचासक्त। दक्षिणादानें शुद्धचित्त। व्हावेत हें मनोगत बाबांचें।।१३४।। “यज्ञेन दानेन तपसा” ही श्रुति। आत्मज्ञानोत्सुकाहीप्रती। दक्षिणाप्रदान साधन युक्ती। स्पष्ट वचनोक्ति सांगते।।१३५।। भक्त स्वार्थी वा परमार्थी। दोघांसी व्हावी इष्टप्राप्ति। तरी दक्षिणा निजगुरुप्रती। निजहितार्थी द्यावी कीं।।१३६।। प्रजापतीही देवां दैत्यां। मानवांसकट तीन अपत्यां। ब्रह्मचर्यवास संपतां। उपदेश मागतां हेंचि वदे।।१३७।। ‘द’ हा एकाक्षर उपदेश केला। काय एणें बोध झाला। तोही विचारुनि दृढ केला। अभिनव लीला गुरु-शिष्य।।१३८।। “दान्त व्हावें” देव समजले। “दया करा” असुर समजले। “दान द्यावें” मानव समजले। प्रजापति “भलें भलें” म्हणे।।१३९।। देव नव्हते कोणी अन्य। मानवचि परि स्वभावे भिन्न। अदान्त उत्तमगुणसंपन्न। देव हें अभिधान तयांचें।।१४०।। मानवांमाजीच आहेत असुर। जे हिंसापर दुष्ट क्रूर। मानवां गांजी लोभ दुर्धर। एवं त्रिप्रकार मानव।।१४१।। तरी लोभप्रधान नर। लोभगर्तेतूनि काढावया वर। भक्तहितेच्छा ओढवी कर। कृपासागर साईनाथ।।१४२।। तैत्तिरीयोपनिषदनुवाक। एकादर्शी श्रुतिही देख। दानप्रकार आज्ञापी अनेक। त्यांतील प्रत्येक परिसावा।।१४३।। देणें नित्य श्रद्धेनें द्यावें। विनाश्रद्धा दिधलें न पावे। राजाज्ञे शास्त्राज्ञे भ्यावें। लज्जेनें द्यावें कांहींतरी।।१४४।। विवाहादि लोकाचार। तेथेंही देणें लागे अहेर। देऊनि राखावा मित्राचार। लोकव्यवहार-शिक्षा ही।।१४५।। बाबाही दकारें भक्तांप्रत। भक्तहितार्थ तेंचि मागत। करा दया दान व्हा दान्त। सौख्य अत्यंत लाधाल।।१४६।। अदान्तत्वादि दोषत्रय। करावया हा त्रिदोषक्षय। हा एकाक्षर स्वल्प उपाय। शिष्यार्थ गुरुराय योजिती।।१४७।। काम क्रोध आणि लोभ। आत्मोन्नतीलागीं अशुभ। तयांचा जय अति दुर्लभ। यदर्थ सुलभ उपाय हा।।१४८।। जैसी ही श्रुती तैसीच स्मृती। तियेचीही ऐसीच अनुमती। तियेचें अवतरण श्रोतयांप्रती। दृढ प्रतीत्यर्थ देतसें।।१४९।।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

काम क्रोध लोभ जाण। हीं नरकाचीं द्वारे तीन। यांचे पायीं आत्मविनाशन। यदर्थ निश्चून त्यागावें।।१५०।। परम दयाळू साई समर्थ। साधावया भक्तहितार्थ। तयांलागीं दक्षिणा मागत। शिक्षणही देत त्यागाचें।।१५१।। दक्षिणेची काय किंमत। साधावया गुरुवचनार्थ। प्राणही द्यावया नाही जो उद्यत। तयाचा परमार्थ कायसा।।१५२।। खरेंच भक्तकल्याणावीण। बाबांस काय दक्षिणेचें कारण। स्वयें तयांचें नव्हतें जीवन। अवलंबून दक्षिणेवरी।।१५३।। पोटासाठीं भिक्षा मागत। दक्षिणेपोटीं नव्हता स्वार्थ। दक्षिणादानें शुद्धचित्त। व्हावेत निजभक्त हा हेत।।१५४।। उपरिनिर्दिष्ट वेदवचन। तदनुसार दक्षिणाप्रदान। आधीं घडवूनि आणिल्यांचून। न घडे पूजन संपूर्ण।।१५५।। पुरे आतां हा दक्षिणा-ग्रंथ। विशद झाला तन्मथितार्थ। नाही अभिलाष ना स्वार्थ। भक्तस्वहितार्थ दक्षिणा।।१५६।। म्हणूनि आतां कथाभाग। पुढें निवेदूं यथासांग। ऐका रतनजी-दक्षिणाप्रसंग। कौतुक चांग साईचें।।१५७।। श्रोतीं पूर्ण कृपापूर्वक। परिसिजे हें अद्भुत कथानक। साईस्वरूप कैसें व्यापक। कैसें अलोकिक देखिजे।।१५८।। शेटीपाशीं दक्षिणा मागतां। साई कथिती पूर्ववृत्तांता। परि तो नाठवे शेटीचे चित्ता। वाटली विस्मयता तयांसी।।१५९।। तीन रुपये चौदा आणे। त्वां मज दिधले ते मी जाणें। बाकी जे आणिले मजकारणें। ते मज दक्षिणे देई गा।।१६०।। हेंचि बाबांचें प्रथमदर्शन। ऐकूनि बाबांचें हें वचन। रतनजी शेट विस्मयापन्न। करूं स्मरण लागती।।१६१।। शिरडीस पूर्वीं आलों नाहीं। कोणासवें न पाठविलें कांहीं। ऐसें असतां आश्चर्य पाहीं। महाराज साई वदती हे।।१६२।। नाहीच ऐसें कधीं घडलें। रतनजी मनीं बहु अवघडले। दक्षिणा दिधली पायां पडले। तयां नुलगडलें तें कोडें।।१६३।। तें तितुकेंचि राहूनि गेलें। प्रयोजन येण्याचें निवेदन केलें। पुनश्च पायीं लोटांगण घातलें। जोडूनि बैसले निजहस्त।।१६४।। शेटजी मनीं बहु धाले। म्हणती बाबा बरें केलें। पूर्वभाग्य उदया आलें। दर्शन झालें पायांचें।।१६५।। मी दुर्दैवी अल्पज्ञ। नेणें पूजा अर्चा यज्ञ। विधिवशें हें त्रिकालज्ञ। प्राज्ञदर्शन घडलें की।।१६६।। आपण जाणतां माझी चिंता। करा दूर ती कृपावंता। लोटूं नका या अनन्यभक्ता। पायांपरता दयाळा।।१६७।। दया उपजली साईनाथा। म्हणती चिंता न करीं वृथा। तव नष्टचर्ये येथूनि आतां। पाया उतरता लागला।।१६८।। प्रसाद उदीचा हातीं दिला। कृपेचा कर शिरीं ठेविला। “मनाची मुराद पुरवील अल्ला”। आशीर्वाद दिधला शेटीस।।१६९।। मग आज्ञापन घेतलें। रतनजी परतोन नांदेडा आले। जें जें जैसें घडलें। सविस्तर कथिलें गणुदासा।।१७०।। यथायोग्य झालें दर्शन। आनंदनिर्भर झालें मन। प्रसादपूर्वक आश्वासन। आशीर्वचन पावलो।।१७१।। यथास्थित सर्व झालें। परि एक नाहीं मज समजलें। महाराज हें काय वदले। कांहींही नुमजलें मजलागीं।।१७२।। “तीन रुपये चौदा आणे। त्वां मज दिले मी जाणें”। बाबांचें हें काय बोलणें। सांगा स्पष्टपणें मज सारें।।१७३।। कुठले रुपये कुठले आणे। कुठूनि पूर्वीं घडलें देणें। यांतील इंगित कांहींच नेणें। प्रथमचि जाणें शिडीचें।।१७४।। मज तों कांहीं उकल न पडे। भासे मज हें गूढ रोकडें। दुर्बोध केवळ हें मज कोडें। आपणा उलगडे तरी कां।।१७५।। हा तरी एक चमत्कार। दासगणू करिती विचार। काय असावें यांतील सार। मनाचा निर्धार होईना।।१७६।। आठवे पूर्ण विचारांतीं। एक अवलियाची मूर्ति। मौलीसाहेब जयां वदती। आठवली चितीं बुवांच्या।।१७७।। जातीचे हे मुसलमान। कार्यक्रम संतांसमान। धंदा हमालीचा करून। प्राक्तनाधीन वर्तती।।१७८।। यांचें चरित्र सविस्तर देतां। विषयांतर होईल ग्रंथा। मौलीसाहेब- चरित्रकथा। ठावी समस्तां नांदेडीं।।१७९।। शिरडीस जाणें ठरल्यावरी। मौलीसाहेब यांची फेरी। सहज शेटजींचे घरीं। स्वेच्छाचारीं जाहली।।१८०।। तयां उभयतां परस्पर। प्रेम होतें अपरंपार। फलपान-सुमनहार। यथोपचार अर्पिले।।१८१।। शेटजीस होऊनि प्रेरणा। दिधला मौलीस छोटा खाना। तेथील खर्चाची कल्पना। स्मरली तत्क्षणा गणुदासा।।१८२।। खर्चाची यादी आणविली। पईन पई सर्वही धरली। तयाची मग एकंदर केली। बेरीज झाली बरोबर।।१८३।। तीन रुपये चौदाच आणे। तंतोतंत अधिक ना उणें। तयाची पावती बाबांनीं देणें। आश्चर्य बहुगुणें सर्वत्रां।।१८४।। साई महाराज ज्ञानराशी। जाणे बैसोनियां मशिदीसी। भूत-भविष्य-वर्तमानासी। कवण्याही देशीं घडो तें।।१८५।। भूतमात्रीं एकात्मता। असलियावीण साईसमर्था। येईल कां हा प्रकार अनुभवितां। अथवा सांगतां दुजियांतें।।१८६।। शिरडीपासूनि नांदेड दूर। दोहींमध्ये महदंतर। अनोळखी हे संत परस्पर। साईस ही तार यावी कैसी।।१८७।। साईमहाराज तो मी एक। मौलीबुवा कोणी आणिक। भेदबुद्धीचा हा विवेक। नाही अनेकत्व उभयांत।।१८८।। मौलीबुवांचा तोचि आत्मा। असे सर्वांचा सर्वातरात्मा। परि या एकात्मतेच्या धर्मा। धन्य त्या वर्मा जाणे तो।।१८९।। बाह्य देहें जरी वियुक्त। अंतरीं दोघे नित्ययुक्त। “ते दोघे” ही वाणी अयुक्त। कधींही विभक्त नव्हत ते।।१९०।। त्या दोघांचें एकज्ञान। एकप्राण एक अनुसंधान। दोघेही एक चैतन्यघन। समसमान वृत्तीनें।।१९१।। शिरडी-नांदेडीं महदंतर। त्या दोघांचें एक अंतर। एक प्राण एक शरीर। तेणें ही तार परस्परां।।१९२।। काय नवल हें साधुसंत। तारायंत्रें तारारहित। कुठें कांहींही घडो सृष्टींत। साद्यंत अवगत तयांतें।।१९३।। पुढें योग्य काळ लोटला। रतनजीस देव पावला। स्त्रियेसी त्याच्या गर्भ राहिला। वृक्ष पालवला आशेचा।।१९४।। सुवेळीं कुटुंब बाळंत झालें। आशीर्वचन सत्य झालें। पुत्ररत्न पोटीं आलें। आनंदले रतनजी।।१९५।। पडतां बहुसाल अवर्षण। व्हावें अवचट पर्जन्यवर्षण। तैसे हे शेटजी निवाले पूर्ण। पुत्रसंतानप्राप्तीनें।।१९६।। पुढें तो वंशवेल जो फुलला। यथाक्रम विस्तारत गेला। कन्या-पुत्रीं सुखें डंवरला। सौख्य लाधला रतनजी।।१९७।। पुढेंही जात साईदर्शना। पावूनि तयांच्या आशीर्वचना। पूर्ण जाहल्या मनकामना। तुष्टले मना रतनजी।।१९८।। वसंती जरी आम्र सुफलित। सर्वचि फळें पक्व न होत। बारा मुलांत चार हयात। सुखें नांदत सांप्रत।।१९९।। यदृच्छेनें जें जें घडावें। त्यांतचि ज्याचें चित्त सुखावें। ऐसे रतनजी गोड स्वभावे। खेद न पावले तिळभर।।२००।। आतां पुढील कथेचें सार। साईनें भरलें स्थिरचर। कोणीं कुठेंही बैसूनि स्थिर। घ्यावा साचार अनुभव।।२०१।। ठाणें शहरचा एक गरीब लाचार। उपनांव जयाचें चोळकर। कैसे तयाच्या भावार्थावर। जाहले गुरुवर प्रसन्न।।२०२।। पूर्वीं कधीं न पाहिलें देखिलें। तया साईस कैसें नवसिलें। कैसे तयांचे मनोरथ पुरले। अनुभव दिधले कैसे त्यां।।२०३।। कायसें भजन प्रेमावीण। वाचणें पोथी

अर्थावीण। देव कैचा भावावीण। अवघा शीण तो सारा।।२०४।। कुंकुमतिलकावीण भाळ। अनुभवावीण ज्ञान फोल। नाही हें पुस्तकी विद्येचे बोल। अनुभवे तोल करावे।।२०५।। किमर्थ हा प्रबंध साईलीला। अनुबंध याचा ठावा न मजला। मजकरवी जो साईनीं लिहविला। ठावे तयांसीच प्रयोजन।।२०६।। शिवाय ग्रंथास लागे अधिकारी। मी तों साईची करितों चाकरी। तयांची ही दफ्तरदारी। आज्ञाधारी तयांचा।।२०७।। श्रोते चातक तृषाकीर्ण। साई समर्थ स्वानंदघन। वर्षे अगाध कथाजीवन। तृषा शमन करावया।।२०८।। जिया सतेनें हे वाणी। जयांचें हें चरित्र वर्णी। तयांचिया पदरजकणीं। घेऊं लोळणी हे काया।।२०९।। तोच या वाचेचा प्रवर्तविता। तोच निजकथेचा कथयिता। त्याचेच पार्थी होवो स्थिरता। चंचल चित्ता माझिया।।२१०।। जैसें हें कायिक आणि वाचिक। तैसेंच भजन हें मानसिक। घडो मज अक्षय सुखदायक। दीन मी पाईक साईचा।।२११।। चरित्रवदता आणि वदविता। जरी साईच नटला तत्त्वता। तरी काय भिन्न तच्छ्रोता। तोही न परता साईवीण।।२१२।। दिसाया दिसे चरित्र केवळ। परि हा सकळ साईचा खेळ। स्वयेच होऊनि खेलिया प्रेमळ। खेळ हा प्रबळ मांडिला।।२१३।। अगाध साईबाबाचरित्र। भक्तांसी अनुभव दावूनि विचित्र। करूनि मजला निमित्तमात्र। तुष्टवीत निजछात्र-समुदाय।।२१४।। चरित्र नव्हे हा सुखाचा ठेवा। निज परमामृताचा मेवा। भाग्ये आगळा तेणेचि सेवावा। भक्तिभावाकरोनी।।२१५।। नवल गुरुकृपेचा महिमा। स्मरण रहावे भक्तां आम्हां। म्हणवूनियां ग्रंथपरिश्रमा। भक्तविश्रामार्थ सेविलें।।२१६।। आवडीं हें चरित्र गातां। उल्लसेल श्रवणसंपन्नता। कथानुवृत्त्यनुवादे भक्ता। भक्तिप्रेमळता वाढेल।।२१७।। श्रवण करितां रात्रंदिन। तुटेल मायामोहबंधन। निरसेल त्रिपुटीचें भान। सुखसंपन्न श्रोतेजन।।२१८।। धरूनि श्रीसाईचरण। हेमाड अनन्यभावे शरण। विसंबू न पावे एकही क्षण। पार्थीच लोटांगण अखंड।।२१९।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। रतनजी-साईसमागमो नाम चतुर्दशोऽध्यायः संपूर्णः।।

।।श्रीसद्गुरुसाईनाथार्पणमस्तु।। शुभं भवतु।।